Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 6, August-2018, ISSN 2230-7540

भारत में स्त्री विमर्श और स्त्री संघर्ष

Munna Lal Nandeshwar[1]* Dr. Dinesh Kumar Verma[2]

[1] Sport Officer, Govt. Nehru PG College, Dongargarh, District-Rajnandgaon (C.G.)

[2] Government College Gadasarai, District-Dindori, Madhya Pradesh

सार - ***पश्चिम के स्त्री आंदोलनों और स्त्री विमर्श से तुलना करते हुए कई बार हमारे योग्य विद्वान भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री संघर्ष की उपेक्षा कर जाते हैं। हिंदी के विमर्शात्मक लेखन पर भी इसी तरह का एक खास नजरिया चस्पां कर दिया गया है और उसका मूल्यांकन चंद लेखिकाओं के आधार पर करके एक सामान्य निष्कर्ष निकाल दिया जाता है। ऐसे में भारत के स्त्री-संघर्ष के इतिहास पर पुनर्विचार करना जरुरी है। स्त्री विमर्श एक वैश्विक विचारधारा है लेकिन विश्वभर की स्त्रियों का संघर्ष उनके अपने समाज सापेक्ष है। इस सन्दर्भ में स्त्री संघर्ष और स्त्री विमर्श दोनों को थोड़ा अलग कर देखने की जरूरत है हाँलाकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इसलिए किसी एक देश में किसी खास परिस्थिति में चलने वाला स्त्री संघर्ष एकमात्र सार्वभौमिक सत्य नहीं हो सकता है, प्रेरणास्रोत हो सकता है। हर देश का अपना अलग-अलग बुनियादी सामाजिक ढांचा है। ऐसे आन्दोलन वैश्विक विचारधारा के विकास में सहायक हो सकते हैं लेकिन यह जरुरी नहीं है कि हर आन्दोलन इस वैश्विक विचारधारा की सैद्धांतिकी को आधार बना कर चले।***

----------X----------

प्रस्तावना

किसी एक मुद्दे को लेकर शुरू हुआ आन्दोलन अपनी चेतना में कई स्तरों पर न्याय की लड़ाई को समेटे रहता है। भारत में स्त्री संघर्ष और स्त्री अधिकार के आन्दोलन को इसी रूप में स्वतंत्रता आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है। राष्ट्रवादी आंदोलन वाला स्त्री आंदोलन बन गयी स्त्री की राष्ट्रमाता छवि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का मूल ढांचा पितृसत्तात्मक राष्ट्रवाद का है लेकिन भारत में स्त्री आन्दोलन भी इसी ढांचे के साथ विकसित होता हुआ दिखाई देता है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के दौरान विकसित होते हुए स्त्री आन्दोलन को भारत के तत्कालीन राष्ट्रवादी आन्दोलन से अलग करके नहीं देखा जा सकता है लेकिन कई स्तरों पर उनके अपने संघर्ष भी रहे हैं। इस संघर्ष की शुरुआत वहीं से स्पष्ट होने लगती है जब राष्ट्रवादी आन्दोलन के अगुआ स्त्री की तत्कालीन दशा में सुधार तो लाना चाहते हैं लेकिन उसे परम्परागत परिवार के दायरे में सीमित रखकर और सामाजिक स्तर पर स्त्री की राष्ट्रमाता की छवि निर्मित करके। जहाँ न तो स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व है और न ही उसकी अस्मिता। एक ओर जहाँ रमाबाई जैसी स्त्री को हिन्दू धर्म छोड़ना पड़ा वहीं दूसरी ओर होमरूल जैसे आन्दोलन का हिंदुत्व से ओत-प्रोत धार्मिक स्वरुप जिसमें स्त्रियों की बड़े स्तर पर सक्रिय भागीदारी थी। यही एक बड़ा कारण रहा दलित आन्दोलन और स्त्री आन्दोलन की संवेदनात्मक स्तर की दूरी का भी। फिर भी संघर्ष की इस लम्बी परम्परा को किसी भी स्तर से नकारा नहीं जा सकता है जहाँ स्त्रियाँ अपने अधिकारों की माँग के साथ खड़ी हो रही थीं। सरला देवी जैसी पुनरुत्थानवादी स्त्री ने भी विधवाओं की शिक्षा और उनके अधिकारों की माँग की थी। इस रूप में उस समय स्त्रियों की लड़ाई दोहरे स्तर पर चल रही थी, एक तो उपनिवेशवादी ताकतों के खिलाफ दूसरे अपने घर में उनकी नियति निर्धारित करने वाली पुरुषवादी मानसिकता के खिलाफ। अधिकारों के लिए हर कदम पर किया संघर्ष यह सही है कि पश्चिम में स्त्रियों को मताधिकार के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा और उस रूप में भारत में कोई मताधिकार आन्दोलन नहीं चलाद्य यह भी उतना ही सत्य है कि कोई भी आन्दोलन गहराई तक जाकर लोगों की चेतना को झकझोरता है।

इससे यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है कि भारत में मताधिकार आन्दोलन नहीं हुआ इसलिए यहाँ की स्त्रियों में अपने अधिकारों को लेकर कोई चेतना जागृत नहीं हुई। यहाँ भी स्त्रियों को अपने अधिकारों को लेकर कदम-कदम पर संघर्ष करना पड़ा है और यह तभी संभव हो सका जब उनके भीतर भी स्वाधिकार की चेतना जगी। स्वयं को एक ऑब्जेक्ट के बदले एक संवेदनात्मक इंसान समझने की चेतना जगी।

www.ignited.in

अपनी देह को किसी के उपभोग की वस्तु न बनने देने की चेतना जगी। यहाँ स्त्रियों को अपना शरीर ढँकने तक के लिए संघर्ष करना पड़ा है। इसी भारत में शुचितावाद और सुधारवाद के नाम पर जहाँ परम्परागत स्वतंत्र महिला समूहों को तोड़ करके उन्हें वेश्या की श्रेणी में शामिल किया गया (और वेश्याओं के सुधार के नाम पर स्त्री देह और स्त्री अस्मिता को किस तरह प्रताड़ित किया गया, अभी भी नीतिनिर्माताओं का उनके प्रति क्या रवैया है यह छुपा हुआ तथ्य नहीं है) वहीं दूसरी ओर दक्षिण में निम्न तबके की स्त्रियों को शरीर के ऊपरी हिस्से को ढँकने की आजादी नहीं थी क्योंकि उच्च जाति के पुरुषों की गंदी कामुक दृष्टि को स्त्री देह के उस हिस्से को देखने और उससे छेड़छाड़ करने का जन्मसिद्ध अधिकार जो प्राप्त था। भारत की बहुस्तरीय समाज व्यवस्था में स्त्री संघर्ष का इतिहास एक स्तरीय नहीं हो सकता।

साहित्यिक स्त्री विमर्श क्योंकि लेखन आंदोलन को प्रभावित करता है और आंदोलन लेखक को जहाँ तक साहित्यिक विमर्श की बात है तो उसका मूल ढाँचा भाषा और उससे जुड़े समाज के सापेक्ष होता है। हर भाषा के साहित्यिक विमर्श का अपना सामाजिक आधार, अपनी समस्यायें और अपना स्वरुप होता है। यह संभव है कि कुछ मुद्दों को लेकर उसका एक वैश्विक स्वरुप निर्मित हो जाये लेकिन जमीनी स्तर पर वह अपने समय और समाज के सापेक्ष ही होता है इसलिए किसी भी भाषा के किसी भी विमर्श का मूल्यांकन करते समय उसके सामाजिक ढाँचे को भी ध्यान में रखना जरुरी हो जाता है। भारत के बहुस्तरीय सामाजिक ढाँचे में स्त्री का संघर्ष सिर्फ देह की स्वतंत्रता या लिंग की लड़ाई तक सीमित नहीं है। यहाँ स्त्री को कई मोर्चे पर एक साथ लड़ना है और यौनिक स्वतंत्रता इस लड़ाई का अनिवार्य हिस्सा है।

हिंदी भाषा की लेखिकाएँ हों या अन्य भारतीय भाषाओं की, उनका लेखन भारतीय समाज और संस्कृति के रुढ़िवादी पुरुषसत्तात्मक ढाँचे के बहुस्तरीय विद्रूपताओं को उजागर करते हुए सामने आता है ऐसे में उनका मूल्यांकन किसी एक सिद्धांत के आधार पर करना उचित नहीं है। हिंदी के नारीवादी विमर्श की भी अपनी विचारधारा है और यह विचारधारा अचानक से एक दिन में विकसित नहीं हुई है बल्कि एक लंबे संघर्ष और समझ का परिणाम है। साथ ही साथ यह विचारधारा विकसित होती हुई विचारधारा है न कि जड़ हो चुकी, अनेक आयामों में हो रहा स्त्री लेखन इसका प्रमाण है। आन्दोलन लेखन को प्रभावित करता है और लेखन आन्दोलन कोद्य इसके लिए निश्चित तौर पर संगठित होने कि जरूरत है, साथ वैचारिकी स्पष्ट करने की भीद्य जिन संगठनों कि विचारधारा का एक निश्चित प्रारूप है उनकी सक्रियता किसी भी आन्दोलन का प्रारूप तय करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, 16 दिसम्बर के आन्दोलन में यह बात देखी जा सकती हैद्य साहित्य की भी अपनी वैचारिकी होती है और उस विचार का एक प्रारूप यह बात तो निश्चित तौर पर महत्वपूर्ण है कि किसी भाषा में किस तरह की सैद्धांतिक किताबें आ रही हैं लेकिन इसके साथ यह भी देखना चाहिए कि किसी भाषा के रचनात्मक लेखन की वैचारिकी की दिशा क्या है! खासतौर पर विमर्शात्मक साहित्य का विकास किन-किन आयामों में हो रहा है क्योंकि विचारधारा के भी अपने कई आयाम होते हैं।

हिंदी साहित्य में 'स्त्री विमर्श'

पहली बात तो किसी भी भाषा का कोई भी बड़ा विमर्श दो-चार लेखकों के दम पर लम्बे समय तक नहीं चलता है और दूसरी बात कि वह किसी एक ही धारा में विकसित नहीं होता है। यदि किसी साहित्यिक विमर्श का मूल्यांकन दो-चार लेखकों को आधार बना कर किया जाये और निष्कर्ष भी दे दिया जाये तो यह साहित्य के साथ ही साथ उस विमर्श के भी बड़े परिप्रेक्ष्य की उपेक्षा हैद्य हिंदी साहित्य में भी स्त्री विमर्श कई धाराओं में विकसित हुआ और उसका मूल कारण लेखिकाओं का अपना अनुभव जगत और अपनी अलग-अलग सामाजिक स्थिति है। जिस 'मर्दवाद' के खिलाफ स्त्री विमर्श खड़ा हुआ है उसकी प्रतिक्रिया में 'स्त्रीवाद' का वह रूप भी आता है जहाँ वह मर्दवादी अवधारणा पर ही खड़ा दिखाई देता है लेकिन ऐसी प्रतिक्रिया पश्चिम के स्त्री विमर्श का भी हिस्सा रही है। ऐसी प्रतिक्रियावादी धारा किसी भी विमर्श को दिग्भ्रमित कर सकती है खासतौर पर उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों की दिशा को, इसलिए इस मुद्दे पर खुल कर बहस और आलोचना होनी चाहिए लेकिन इसे मूल्यांकन की कसौटी नहीं मान लेनी चाहिए।

मनुष्यता की पहचान के आधार रचा गया स्त्री संघर्ष का लंबा इतिहास स्त्री देह की स्वतंत्रता उसे अपने सौन्दर्यबोध, अपनी अनुभूत यों और संवेदना के आधार पर समझने और महसूस करने में है और हिंदी का स्त्री लेखन इस स्तर तक पहुँच चुका है, जहाँ भारतीय समाज और वर्चस्वशाली संस्कृति द्वारा स्त्रियों पर थोपा गया यौन शुचिता का आवरण तार-तार हो गया है। इस यौन शुचिता के पीछे पितृसत्तात्मक समाज की लिंगभेद और स्त्री देह के दमन की अवधारणा है और हिंदी के स्त्री लेखन में इस अवधारणा की पहचान की जा चुकी है। कभी-कभी यौन मुक्ति का यह संघर्ष उसी पुरुषवादी अवधारणा में फँसता नजर आता है जब यौन मुक्ति की बात करते-करते स्त्री फिर उसी पुरुषवादी सौन्दर्यबोध की कसौटी पर स्वयं को कसने लगती है लेकिन भारत के सन्दर्भ में जहाँ मुख्य धारा में भी अभी तक सामाजिक स्वतंत्रता का कोई स्वरुप नहीं है वहाँ लैंगिक स्वतंत्रता बार-बार उसी सांस्कृतिक वर्चस्व वाले जाल में उलझता नजर आये तो यह बहुत आश्चर्यजनक नहीं है। सुमन राजे ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि आज तक हम

www.ignited.in

राजनीतिक-सामाजिक स्वतंत्रता की ही व्याख्या नहीं कर सके हैं और स्त्री स्वतंत्रता की बात उसी परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। निरपेक्ष स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं हो सकती।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता का मूल अभिप्राय है 'निर्णय की स्वतंत्रता' और स्त्री स्वतंत्रता का रूप क्या होगा, यह स्वयं स्त्रियों को ही तय करना है, यह निर्णय कुछ 'विशिष्ट' महिलाओं द्वारा नहीं लिया जा सकता। हिंदी साहित्य में भी कुछ स्त्री लेखकों को स्त्री-विमर्श का नेतृत्व करने वाला समझना ऐसी ही भूल हैद्य किसी भी लेखक की मुखरता नहीं बल्कि उसका लेखन उसकी साहित्यिक जिम्मेदारी का सबूत होता है।

उपसंहार

साहित्य किसी भी सैद्धांतिकी से प्रभावित हो सकता है और नया सिद्धांत भी गढ़ सकता है लेकिन साथ ही उसका एक बड़ा सामाजिक सरोकार होता है और यहीं से स्त्री-पुरुष के बदले मनुष्यता की जमीन तैयार होती है। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श पितृसत्ता के खिलाफ मुखर होते हुए अब इस जगह पर पहुँच गया है जहाँ स्त्री अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान कर पाने में सक्षम हैद्य यही वह आधार है जहाँ से सामाजिक और लैंगिक विभाजन के स्थान पर मनुष्यता की पहचान शुरू होती है। यह आधार स्त्रियों के लम्बे संघर्ष से ही निर्मित हुआ है। यदि भारत में स्त्रियों के संघर्ष का लम्बा इतिहास नहीं होता तो किसी सैद्धांतिकी या अवधारणा पर आधारित लेखन का बहुस्तरीय भारतीय समाज के सन्दर्भ में न तो खास प्रासंगिकता होती और न ही उसका ठोस देशज स्वरुप निर्मित हो पाता।

न्याय की लड़ाई के लिए होने वाले किसी भी आन्दोलन का प्रभाव किसी भी जिम्मेदार लेखक की लेखनी पर पड़ता है चाहे वह प्रत्यक्षतः उस आन्दोलन का नेतृत्वकर्ता न भी रहा होद्य ऐसी परिस्थिति में उसकी जिम्मेदारियों पर सवाल उठाया जा सकता है लेकिन उसके लेखन को नकारा नहीं जा सकता हैद्य ज़रूरी है हिंदी स्त्री विमर्श के नए आयाम की तलाश हिंदी में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है। उसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को भी तलाशने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न कि सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक खास दायरे में बाँधने की। कला साहित्य के हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना जरुरी है। यहाँ तक कि स्त्री की स्थिति को निर्धारित करने वाले संस्थाओं में आये परिवर्तनों को भी लक्ष्य करना जरुरी है। जैसे 16 दिसम्बर की घटना के बाद आने वाली वर्मा कमेटी की रिपोर्ट ऐसे ही परिवर्तनों का परिणाम हैद्य जहाँ तक हिंदुस्तान में संस्कृति को बदलने की लड़ाई के शुरू होने की बात है तो वह उसी दिन से शुरू हो गई होगी जिस दिन पहली स्त्री ने अपने अधिकारों की माँग करके वर्चस्वशाली संस्कृति के समक्ष प्रतिरोधात्मक संस्कृति की शुरुआत की होगी। हम नहीं जानते कि वह स्त्री कौन थी या उसकी माँग क्या थी! हो सकता है उसकी पहली लड़ाई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर ही रही हो! १६ दिसम्बर की घटना के बाद उठने वाला आन्दोलन सांस्कृतिक वर्चस्व के खिलाफ हुए संघर्षो के लम्बे इतिहास का एक बड़ा अध्याय है और इस अध्याय का इस रूप में लिखा जाना तभी संभव हो सका जब उसकी एक मजबूत पृष्ठभूमि निर्मित हो चुकी थीद्य चाहे मथुरा रेप केस रहा हो या माया त्यागी रेप केस या मनोरमा देवी रेप केस रहा हो, यहाँ के पुरुषवादी सत्ता-विमर्श की विद्रूपता को दिखाने के लिए ऐसे हजारों नाम लिए जा सकते हैं और उनके विरोध में उठने वाले छोटे से छोटे स्वर को भी सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रतिरोध माना जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्त्री मुक्ति का सपना- सं0 प्रो0 कमला प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, पृ0सं0-446
2. औरत अपने लिए - लता शर्मा - पृ0सं0-126
3. स्त्रियों की पराधीनता - जान स्टुअर्ट मिल - पृ0सं0-10
4. स्त्रियां -मंगले श डबराल - पृ0सं0-18
5. भारत में स्त्री असमानता: एक विमर्श - डा0 गोपा जोशी,पृ0सं0-263

Corresponding Author

Munna Lal Nandeshwar*

Sport Officer, Govt. Nehru PG College, Dongargarh, District-Rajnandgaon (C.G.)